मैं तो उसी का सम्मान करूँगा जो मनसा-वाचा-कर्मणा हर पहलू से सम्मान के योग्य है। जिसे मैं जानता हूँ कि मक्कारी, स्वार्थ-साधन और निन्दा के सिवा और कुछ नहीं करता, जिसे मैं जानता हूँ कि रिश्वत और सूद तथा खुशामद की कमाई खाता है, वह अगर ब्रह्मा की आयु लेकर भी मेरे सामने आये, तो भी मैं उसे सलाम न करूँ। इसे तुम मेरा अहंकार कह सकती हो। लेकिन मैं मजबूर हूँ, जब तक मेरा दिल न झुके, मेरा सिर भी न झुकेगा। मुमकिन है, तुम्हारी बहू के मन में भी उन देवियों की ओर से अश्रद्धा के भाव हों। उनमें से दो-चार को मैं भी जानता हूँ। हैं वे सब बड़े घर की; लेकिन सबके दिल छोटे, विचार छोटे। कोई निन्दा की पुतली है, तो कोई खुशामद में युक्त, कोई गाली-गलौज में अनुपम। सभी रूढ़ियों की गुलाम ईर्श्या -द्वेष से जलने वाली। एक भी ऐसा नहीं, जिसने अपने घर को नरक का नमूना न बना रखा हो। अगर तुम्हारी बहू ऐसी औरतों के आगे सिर नहीं झुकाती, तो मैं उसे दोषी नहीं समझता।'

माँ -'तुम तो हर बात में उसी का पक्ष करते हो बेटा, न-जाने उसने कौन-सी जड़ी सुँघा दी है तुम्हें। यह कौन कहता है कि वह हम लोगों के बीच में आ कूदे, लेकिन बड़ों का उसे कुछ तो आदर-सत्कार करना चाहिए।'

बेटा -'क़िस तरह ?'

माँ -'आकर अंचल से उसके चरण छुए, प्रणाम करे, पान खिलाये, पंखा झले। इन्हीं बातों से बहू का आदर होता है। लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। नहीं तो सब-की-सब यही कहती होंगी कि बहू को घमण्ड हो गया है, किसी से सीधे मुँह बात नहीं करती !'

बेटा (विचार करके) 'हाँ, यह अवश्य उसका दोष है। मैं उसे समझा दूंगा।'

माँ-'(प्रसन्न होकर), %तुमसे सच कहती हूँ बेटा, चारपाई से उठती तक नहीं, सब औरतें थुड़ी-थुड़ी करती हैं, मगर उसे तो शर्म जैसे छू ही नहीं गयी और मैं हूँ, कि मारे शर्म के मरी जाती हूँ।'

बेटा -'यही मेरी समझ में नहीं आता कि तुम हर बात में अपने को उसके कामों की जिम्मेदार क्यों समझ लेती हो ? मुझ पर दफ्तर में न-जाने कितनी घुड़कियाँ पड़ती हैं; रोज ही तो जवाब-तलब होता है, लेकिन तुम्हें उलटे मेरे साथ सहानुभूति होती है। क्या तुम समझती हो, अफसरों को मुझसे कोई बैर है, जो अनायास ही मेरे पीछे पड़े रहते हैं, या उन्हें उन्माद हो गया है, जो अकारण ही मुझे काटने दौड़ते हैं ? नहीं, इसका कारण यही है कि मैं अपने काम में चौकस नहीं हूँ। गल्तियाँ करता हूँ, सुस्ती करता हूँ,लापरवाही करता हूँ। जहाँ अफसर सामने से हटा कि लगे समाचारपत्र पढ़ने या ताश खेलने। क्या उस वक्त हमें यह खयाल नहीं रहता कि काम पड़ा हुआ है। और यह साहब डाँट ही तो बतायेंगे, सिर झुकाकर सुन लेंगे, बाधा टल जायगी पर ताश खेलने का अवसर नहीं है, लेकिन कौन परवाह करता है। सोचते हैं, तुम मुझे दोषी समझकर भी मेरा पक्ष लेती हो और तुम्हारा बस चले, तो हमारे बड़े बाबू को मुझसे जवाब-तलब करने के अभियोग में कालेपानी भेज दो।'

माँ -'(खिलकर), %मेरे लड़के को कोई सजा देगा, तो क्या मैं पान-फूल से उसकी पूजा करूँगी ?'

बेटा -'हरेक बेटा अपनी माता से इसी तरह की कृपा की आशा रखता है और सभी माताएँ अपने लड़कों के ऐबों पर पर्दा डालती हैं। फिर बहुओं की ओर से क्यों उनका हृदय इतना कठोर हो जाता है, यह मेरी समझ में नहीं आता। तुम्हारी बहू पर जब दूसरी स्त्रियाँ चोट करें, तो तुम्हारे मातृ-स्नेह का यह धर्म है कि तुम उसकी तरफ से क्षमा माँगो, कोई बहाना कर दो, उनकी नजरों में उसे उठाने की चेष्टा करो। इस तिरस्कार में तुम क्यों उनसे सहयोग करती हो ? तुम्हें क्यों उसके अपमान में मजा आता है ? मैं भी तो हरेक ब्राह्मण या बड़े-बूढ़े का आदर-सत्कार नहीं करता। मैं किसी ऐसे व्यक्ति के सामने सिर झुका ही नहीं सकता जिससे मुझे हार्दिक श्रद्धा न हो। केवल सफेद बाल, सिकुड़ी हुई खाल, पोपला मुँह और झुकी हुई कमर किसी को आदर का पात्र नहीं बना देती और न जनेऊ या तिलक या पण्डित और शर्मा की उपाधि ही भक्ति की वस्तु है। मैं लकीर-पीटू सम्मान को नैतिक अपराध समझता हूँ। मैं तो उसी का सम्मान करूँगा जो मनसा-वाचा-कर्मणा हर पहलू से सम्मान के योग्य है। जिसे मैं जानता हूँ कि मक्कारी, स्वार्थ-साधन और निन्दा के सिवा और कुछ नहीं करता, जिसे मैं जानता हूँ कि रिश्वत और सूद तथा खुशामद की कमाई खाता है, वह अगर ब्रह्मा की आयु लेकर भी मेरे सामने आये, तो भी मैं उसे सलाम न करूँ। इसे तुम मेरा अहंकार कह सकती हो। लेकिन मैं मजबूर हूँ, जब तक मेरा दिल न झुके, मेरा सिर भी न झुकेगा। मुमकिन है, तुम्हारी बहू के मन में भी उन देवियों की ओर से अश्रद्धा के भाव हों। उनमें से दो-चार को मैं भी जानता हूँ। हैं वे सब बड़े घर की; लेकिन सबके दिल छोटे, विचार छोटे। कोई निन्दा की पुतली है, तो कोई खुशामद में युक्त, कोई गाली-गलौज में अनुपम। सभी रूढ़ियों की गुलाम ईर्श्या-द्वेष से जलने वाली। एक भी ऐसा नहीं, जिसने अपने घर को नरक का नमूना न बना रखा हो। अगर तुम्हारी बहू ऐसी औरतों के आगे सिर नहीं झुकाती, तो मैं उसे दोषी नहीं समझता।'

माँ -'अच्छा, अब चुप रहो बेटा, देख लेना तुम्हारी यह रानी एक दिन तुमसे चूल्हा न जलवाये और झाड़ू न लगवाये, तो सही। औरतों को बहुत सिर चढ़ाना अच्छा नहीं होता। इस निर्लज्जता की भी कोई हद है, कि बूढ़ी सास तो खाना पकाये और जवान बहू बैठी उपन्यास पढ़ती रहे।'

बेटा -'बेशक यह बुरी बात है और मैं हर्गिज नहीं चाहता कि तुम खाना पकाओ और वह उपन्यास पढ़े चाहे वह उपन्यास प्रेमचंदजी ही के क्यों न हों;लेकिन यह भी तो देखना होगा कि उसने अपने घर कभी खाना नहीं पकाया। वहाँ रसोइया महाराज है। और जब चूल्हे के सामने जाने से उसके सिर में दर्द होने लगता है, तो उसे खाना पकाने के लिए मजबूर करना उस पर अत्याचार करना है। मैं तो समझता हूँ ज्यों-ज्यों हमारे घर की दशा का उसे ज्ञान होगा, उसके व्यवहार में आप-ही-आप इस्लाह होती जायगी। यह उसके घरवालों की गलती है, कि उन्होंने उसकी शादी किसी धनी घर में नहीं की। हमने भी यह शरारत की कि अपनी असली हालत उनसे छिपायी और यह प्रकट किया कि हम पुराने रईस हैं। अब हम किस मुँह से यह कह सकते हैं कि तू खाना पका, या बरतन माँज अथवा झाड़ू लगा ? हमने उन लोगों से छल किया है और उसका फल हमें चखना पड़ेगा। अब तो हमारी कुशल इसी में है कि अपनी दुर्दशा को नम्रता, विनय और सहानुभूति से ढाँकें और उसे अपने दिल को यह तसल्ली देने का अवसर दें कि बला से धन नहीं मिला, घर के आदमी तो अच्छे मिले। अगर यह तसल्ली भी हमने उससे छीन ली, तो तुम्हीं सोचो, उसको कितनी विदारक वेदना होगी ! शायद वह हम लोगों की सूरत से भी घृणा करने लगे।'

माँ-'उसके घरवालों को सौ दफे गरज थी, तब हमारे यहाँ ब्याह किया। हम कुछ उनसे भीख माँगने गये थे ?

बेटा -'उनको अगर लड़के की गरज थी, तो हमें धन और कन्या दोनों की गरज थी।'

माँ -'यहाँ के बड़े-बड़े रईस हमसे नाता करने को मुँह फैलाये हुए थे।'

बेटा -'इसीलिए कि हमने रईसों का स्वाँग बना रखा है। असली हालत खुल जाय, तो कोई बात भी न पूछे !'

माँ -'तो तुम्हारे ससुरालवाले ऐसे कहाँ के रईस हैं। इधर जरा वकालत चल गयी, तो रईस हो गये, नहीं तो तुम्हारे ससुर के बाप मेरे सामने चपरासगीरी करते थे। और लड़की का यह दिमाग कि खाना पकाने से सिर में दर्द होता है। अच्छे-अच्छे घरों की लड़कियाँ गरीबों के घर आती हैं और घर की हालत देखकर वैसा ही बर्ताव करती हैं। यह नहीं कि बैठी अपने भाग्य को कोसा करें। इस छोकरी ने हमारे घर को अपना समझा ही नहीं।

बेटा -'ज़ब तुम समझने भी दो। जिस घर में घुड़कियों, गालियों और कटुताओं के सिवा और कुछ न मिले, उसे अपना घर कौन समझे ? घर तो वह है जहाँ स्नेह और प्यार मिले। कोई लड़की डोली से उतरते ही सास को अपनी माँ नहीं समझ सकती। माँ तभी समझेगी, जब सास पहले उसके साथ माँ का-सा बर्ताव करे, बल्कि अपनी लड़की से ज्यादा प्रिय समझे।'

माँ -'अच्छा, अब चुप रहो। जी न जलाओ। यह जमाना ही ऐसा है कि लड़कों ने स्त्री का मुँह देखा और उसके गुलाम हुए। ये सब न-जाने कौन-सा मंतर सीखकर आती हैं। यह बहू-बेटी के लच्छन हैं कि पहर दिन चढ़े सोकर उठें ? ऐसी कुलच्छनी बहू का तो मुँह न देखे।'

बेटा -'मैं भी तो देर में सोकर उठता हूँ, अम्माँ। मुझे तो तुमने कभी नहीं कोसा।'

माँ -'तुम हर बात में उससे अपनी बराबरी करते हो ?'

बेटा -'यह उसके साथ घोर अन्याय है; क्योंकि जब तक वह इस घर को अपना नहीं समझती, तब तक उसकी हैसियत मेहमान की है और मेहमान की हम खातिर करते हैं, उसके ऐब नहीं देखते।'

माँ -'ईश्वर न करे कि किसी को ऐसी बहू मिले !'

बेटा -'तो वह तुम्हारे घर में रह चुकी।'

माँ -'क्या संसार में औरतों की कमी है ?'